विकास के प्रतिमान और आधी आबादी

डॉ0 मालती
एसोसिएट प्रोफेसर
समाजशास्त्र विभाग
एन0 ए0 एस0 कॉलेज, मेरठ

सारांशिकाः अब महिलाएं मात्र गृहिणी की ही भूमिका तक सिमटी नहीं है बल्कि अधिपत्य, जवाबी और परिपक्व स्त्री के रूप में सहज देखी जा सकती हैं। भारत में इन सामाजिक परिवर्तनों का असर शहरी शिक्षित महिलाओं में और उसमें भी विशेष रूप से मध्यमवर्गीय महिलाओं पर अधिक पड़ा है। शहरीकरण, शिक्षा और रोजगार, जोकि वस्तुतः इस सामाजिक बदलाव की देन है, ने उन्हें अपने व्यक्तिव को निखारने तथा अधिकार जताने की बाबत नए आयाम दिखाए हैं। भारतीय शहरी महिलाएं अपनी ग्रामीण बहनों को, जो न सिर्फ घरेलू कामकाज की जिम्मेदारी का निर्वाह करती हैं बल्कि पुरुषों के साथ खेतों में भी हाथ बंटाती है, इसकी भांति ही पर की चारदीवारी से बाहर निकल कर आय सृजित करने लगी हैं। इससे उनकी व्यक्तिगत आकांक्षाओं की भी पूर्ति होती है। घर और नौकरी की अलग–अलग मांगों, जो अक्सर एक–दूसरे से सर्वथा विपरीत होती हैं, के कारण कामकाजी मां को बार–बार दोनों भूमिकाओं को निभाने में दंड का सामना करना पड़ता है। महिला होने के नाते मां के कर्तव्य के साथ–साथ उसे सुसंस्कृत गृहिणी की भूमिका का भी निर्वाह सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए करना पड़ता है।

मुख्य शब्दः विकास, जनसंख्या, महिलाएँ, शिक्षा, आबादी

सार– विकास एक सतत प्रक्रिया है जो समय के साथ चलती रहती है। विकास के दो पक्ष हैं–मानव (जनसंख्या) और संसाधन यदि संसाधनों का उपयोग करके हम मानव जाति की जरूरतें पूरी कर सकें तो हम कह सकते हैं कि हम विकास कर रहे हैं। कोई भी समाज तभी विकसित कहला सकता है, जब उसकी सभी जरूरतें पूरी हो जाती हो। भोजन, आवास, स्वास्थ्य सुविधाएं किसी भी व्यक्ति की आधारभूत जरूरतें है क्योंकि इनके बिना जीवन पल भर भी नहीं चल सकता। लेकिन ये जरूरतें सिर्फ जीवन निर्वाह की हैं। विकास की शर्तें कुछ अलग है, शिक्षा, लिंगानुपात, सामाजिक सुरक्षा, व्यक्तिगत स्वतंत्रता, न्यूनतम स्वास्थ्य सेवाएं और काम करने की आजादी आदि को संयुक्त राष्ट्र संघ विकास का पैमाना मानता है। विकास की इन कसौटी पर महिलाओं की स्थिति बिल्कुल उलट है ।आधुनिक विकास जिस का ढांचा अर्थशास्त्र से निर्मित है ,और जिस में विकास की संपूर्ण व्याख्या आधुनिकता के संदर्भ में की जाती है ,वह आधी मानवता के खिलाफ है यह आज के संदर्भ में एक यक्ष प्रश्न के रूप में सारी दुनिया के सामने है । जिसके समाधान के बिना विकास की बात नहीं की जा सकती है ।

दुनिया बहुत तेजी से बदल रही है और यह बदलाव कई दिशाओं में हो रहा है। पढ़–लिख कर विकास की दौड़ में आ खड़ी हुई महिलाएं अब घर की चारदीवारियों से निकल कर कामकाज की दुनिया में शामिल हो रही हैं। बदली हुई सामाजिक व आर्थिक परिस्थितियों में महिलाओं को शिक्षा और रोजगार के अवसर आसानी से मिलने लगे है जिस कारण उन्हें अभिव्यक्ति की आजादी मिली है, समाज में स्वयं अर्जित प्रतिष्य पाने के साधन मिले हैं और मिली है जीवन को अपने तरीके से जीने की आजादी। जैसे–जैसे महिलाएं घरों से निकल कर कार्यस्थल तक पहुंच रही है, वैसे–वैसे उनकी दिक्कतें भी बढ़ रही हैं। भारत सहित विश्व के अधिकतर देशों में, घर व कार्यालय के बीच बंटी कामकाजी महिलाओं की स्थिति पर शोध हो रहे हैं। भारत के संदर्भ में देखें तो कामकाजी महिलाओं के प्रति समाज के नजरिए में रेखांकित करने योग्य बदलाव आया है। अभी 20 साल पहले तक ही छोटे नगरों में कामकाजी महिलाओं में उनकी किसी सामाजिक या आर्थिक मजबूरी ढूंढ़ी जाती थी और बेटे के विवाह के लिए प्रत्येक मां–बाप एक 'घरेलू' लड़की की खोज में रहता था लेकिन आज स्थिति बिल्कुल उलट चुकी है। आज छोटे–छोटे कस्बों और यहां तक की गांवों में भी कामकाजी लड़की, विवाह योग्य लाड़लों के मां–बापों की पहली पसंद बन गई है।

लेकिन यह तस्वीर का सिर्फ एक रूख है। तस्वीर का दूसरा रूख बेहद स्याह है। कामकाजी महिलाओं को परिवार और पेशे के बीच सामंजस्य स्थापित करने में काफी दिक्कतों का सामना करना पड़ता है क्योंकि समाज ने उनकी उपयोगिता और महत्व को तो स्वीकार कर लिया है लेकिन कामकाजी महिलाओं को जिस पारिवारिक सहारे की जरूरत होती, उससे आधी से ज्यादा कामकाजी महिलाएं आज भी महरूम हैं। उच्च वर्ग की महिलाओं की स्थिति शायद कुछ अलग हो, लेकिन मध्यम वर्ग की अधिकांश कामकाजी महिलाओं को आज भी कार्यालय के बाद घर के कामकाज में जुटजाना पड़ता है। बात चाहे हम महानगरों की करें या छोटे शहरो की, कामकाजी महिलाएं आज भी घर में सबसे पहले उठती है और रात में सबसे बाद में उन्हें बिस्तर नसीब हो पाता है।

निम्न वर्ग की कामकाजी महिलाओं की स्थिति तो और भी खराब है। योजना आयोग की एक रिपोर्ट के अनुसार निम्न वर्ग की अधिकतर कामकाजी महिलाएं अशिक्षित या अल्पशिक्षित होती है। काम करना इस वर्ग की महिलाओं के लिए एक मजबूरी ही है। और मजबूरी में काम पाने के लिए कीमत भी चुकानी पड़ती है। कार्यस्थल पर उनके साथ दोयम दर्जे का व्यवहार किया जाता है। देर शाम जब वो घर लौटती है तो उसे दो–चार होना पड़ता है पारिवारिक हिंसा से। कुछ लोगों को ये बात शायद अतीत की या किस्से–कहानियों की ही लगे लेकिन भारत की यही सच्चाई है। काम में खटने के बाद घर पर पिटना, आज भी हकीकत है कस्बाई भारत की। विवाहित कामकाजी महिलाओं की समस्याएं तो और भी विकराल है। एक सर्वे के मुताबिक मात्र 40 फीसदी महिलाएं ही अपनी इच्छा से कार्यशील होती हैं। लगभग 25 फीसदी महिलाओं को किसी आर्थिक मजबूरी के चलते काम करना पड़ता है तो 25 फीसदी महिलाएं, अपने पति

की इच्छा के कारण ऐसा करती है।

सामाजिक न्याय के तहत सरकार की तो यह नीति है कि यदि पति–पत्नी दोनों किसी सरकारी कार्यालय में कार्य करते हो तो जहां तक संभव हो सके दोनों को एक ही शहर में नियुक्ति दी जाए। लेकिन समस्या निजी क्षेत्र में काम करने वाली महिलाओं को उठानी पड़ती है। अक्सर देखा गया है कि पति का स्थानांतरण होने पर पत्नी को अपनी नौकरी छोड़ देनी पड़ती है। मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अनुसार 10 फीसदी महिलाएं तो मात्र स्थानांतरण से बचने के लिए ही पदोन्नति स्वीकार नहीं करती हैं।

आधुनिक युग में कामकाजी महिलाएं

पिछले कुछ वर्षों में महिलाओं की जीवनशैली में महत्वपूर्ण बदलाव देखने को मिलते हैं, जिनसे उनके व्यवहार, मूल्य, संवेदनाओं तथा प्रेरणा शक्ति ही प्रभावित नहीं हुई है, बल्कि आज ये जीवन के लगभग प्रत्येक क्षेत्र में पुरुषों के कंधे से कंधा मिलाकर भागीदारी कर रही है। सामाजिक परिवर्तन के घूमते चक्र के कारण ही महिलाओं को परंपरागत रूढ़िवादी भूमिका से काफी हद तक मुक्ति मिल गई है, हालांकि इस प्रक्रिया में विभिन्न कानूनी प्रावधानों ने भी सकारात्मक भूमिका निभाई है। अब महिलाएं मात्र गृहिणी की ही भूमिका तक सिमटी नहीं है बल्कि अधिपत्य, जवाबी और परिपक्व स्त्री के रूप में सहज देखी जा सकती हैं। भारत में इन सामाजिक परिवर्तनों का असर शहरी शिक्षित महिलाओं में और उसमें भी विशेष रूप से मध्यमवर्गीय महिलाओं पर अधिक पड़ा है। शहरीकरण, शिक्षा और रोजगार, जोकि वस्तुतः इस सामाजिक बदलाव की देन है, ने उन्हें अपने व्यक्तिव को निखारने तथा अधिकार जताने की बाबत नए आयाम दिखाए हैं। भारतीय शहरी महिलाएं अपनी ग्रामीण बहनों को, जो न सिर्फ घरेलू कामकाज की जिम्मेदारी का निर्वाह करती हैं बल्कि पुरुषों के साथ खेतों में भी हाथ बंटाती है, इसकी भांति ही पर की चारदीवारी से बाहर निकल कर आय सृजित करने लगी हैं। इससे उनकी व्यक्तिगत आकांक्षाओं की भी पूर्ति होती है। घर और नौकरी की अलग–अलग मांगों, जो अक्सर एक–दूसरे से सर्वथा विपरीत होती हैं, के कारण कामकाजी मां को बार–बार दोनों भूमिकाओं को निभाने में दंड का सामना करना पड़ता है। महिला होने के नाते मां के कर्तव्य के साथ–साथ उसे सुसंस्कृत गृहिणी की भूमिका का भी निर्वाह सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए करना पड़ता है।

आर्थिक व्यवस्था और महिलाये

आर्थिक प्रणालियों में स्त्रियों से काम लिया जाता रहा है, बल्कि शायद उनसे काम लेने की जरूरत भी महसूस की जाती रही है और लगभग सभी ऐसी प्रणालियों में वे अपना जीवनयापन के लिए और मनुष्य के नाते तथा समाज का सदस्य होने के नाते अपने संतोष के लिए काम करती रही हैं।

मार्क्स ने कहा था कि स्त्रियों की सामाजिक स्थिति से सामाजिक प्रगति को ठीकठाक मापा जा सकता है। स्त्रियों की स्थिति के कुछ महत्वपूर्ण और आपस में एक–दूसरे से घनिष्ठ रूप से जुड़े पहलू इस प्रकार हैं उनके आदर्श, परिवार में उनकी भूमिका, समाज में उनकी भूमिका, आर्थिक भूमिका, कार्यक्षेत्र और निषिद्ध कार्यों का दायरा आदि। इस संबंध में एम.एस. गोरे का कथन महत्वपूर्ण है, जिसमें उन्होंने लिखा है कि परिवार में स्त्री के छोटे दर्जे का संबंध आर्थिक कार्यों से उसके अलग रखे जाने से हैं। वह अपने इस कथन के समर्थन में भारत की नीची जाति और ऊंची जाति के परिवारों की तुलना प्रस्तुत करते हैं। जिसमें देखा जाता है कि कुछ नीची जाति की स्त्रियों के मामले में विरासती जायदाद की समस्या करीब–करीब है ही नहीं, और वे सामान्यतः लाभप्रद कार्यों में लगी हुई हैं और ऊंची जाति की स्त्रियों की तुलना में उन्हें ज्यादा स्वतंत्रता प्राप्त है क्योंकि ऊंची जाति की स्त्रियां लाभप्रद कार्यों में नहीं लगी हुई हैं अथवा उन्हें आर्थिक कार्यों से अलग रखा जाता है।

पिछले दशकों में मध्य वर्ग की कामकाजी स्त्रियों की संख्या में जबर्दस्त इजाफा हुआ है। द्वितीय महायुद्ध से पूर्व और उसके कुछ समय बाद एक भी मध्यवर्ग और उच्च वर्ग की स्त्रियां ज्यादातर अपने घरों की चहारदीवारी में ही सिमटी रहती थी। राष्ट्र के निर्माण में स्त्रियों का योगदान काफी महत्व रखता है लेकिन राष्ट्र की आर्थिक प्रगति और विकास में भी स्त्रियों की भूमिका कुछ कम महत्व नहीं रखती। इस महान और मजबूत स्त्री शक्ति की ओर उचित ध्यान देने की जरूरत है जिससे कि खुद स्त्रियों को ज्यादा से ज्यादा फायदा हो और साथ ही राष्ट्र के विकास और आर्थिक प्रगति के मामले में ज्यादा से ज्यादा फायदा उठाया जा सके। यह तभी संभव होगा जब स्त्रियों को सम्मान दिया जाए और इसके साथ ही उनकी शक्ति को राष्ट्र के लाभ के लिए और स्त्रियों का दर्जा उठाने लिए सही रास्ते पर लाया जाए।

शहरों में कामकाजी महिलाओं की स्थिति और संख्या में लगातार वृद्धि हो रही है लेकिन छोटे कस्वों और गांवों में स्थिति बहुत अच्छी नहीं है। अभी कुछ समय पूर्व कामकाजी महिलाओं के संदर्भ में एक अध्ययन किया गया जिसके नतीजों का उल्लेख यहां प्रासंगिक होगा। इस अध्ययन के मुताबिक अधिकतर कामकाजी महिलाएं 20 से 45 वर्ष के आयु वर्ग की होती है अर्थात आजादी के बाद जन्मी महिलाएं ही आज घर से निकल कर बाहर का काम संभाल रही हैं। इनमें भी 20–25 वर्ष आयु वर्ग की महिलाओं की संख्या अधिक है जिसका अर्थ है कि आजकल सभी शिक्षित महिलाएं किसी न किसी रोजगार में लग रही हैं।

लगभग 60 प्रतिशत कामकाजी महिलाएं ऐसी होती हैं जिनका जन्म शहरी क्षेत्र में होता है। चूंकि ग्रामीण महिलाओं की परंपराएं उन्हें नौकरी करने की इजाजत नहीं देतीं और उनके पास अवसर भी बेहद सीमित होते हैं इसलिए कामकाजी महिलाओं में ग्रामीण महिलाओं का प्रतिशत कम होता है। जो ग्रामीण महिलाएं कामकाज करती भी हैं वे साधारणतः अपने पारिवारिक धंधों से ही जुड़ी होती है। शहरों में वहीं ग्रामीण महिलाएं नौकरी आदि करती हैं जो उच्च शिक्षा के लिए पहले ही शहर आ चुकी होती हैं। कुल कामकाजी महिलाओं में लगभग 21 प्रतिशत महिलाएं ऐसी होती हैं जिनका जन्म तो ग्रामीण क्षेत्रों में होता है लेकिन उनके परिवार 15–20 वर्ष पहले ही शहरों में आकर बस गए थे।

अधिकतर कामकाजी महिलाएं एकल परिवार से होती हैं। संयुक्त परिवारों की बहुत कम महिलाएं कामकाज के सिलसिले में घर से बाहर जाती है। कृषि के साथ–साथ भारतीय समाज के अन्य आर्थिक क्षेत्रों में महिलाओं की सहभागिता बढ़ रही है, जिसने श्रम

बाजार की आंतरिक संरचना को आंदोलित किया है। आर्थिक विकास की प्रक्रिया में श्रम, श्ममूल्य और श्रमिकों की उपादेयता सिद्ध हो चुकी है। महिलाश्रम मानवीय समाज का महत्त्वपूर्ण अंग है जिसके माध्यम से समाज के सांस्कृतिक मूल्यों का निर्वहन होता है और आर्थिक संरचना की निर्माण प्रक्रिया प्रस्फुटित होती है।

महिलाओं का प्रत्येक समाज में एक सुनिश्चित स्थान होता है। पुरुष प्रधान समाज में पुरुषों की सामाजिक, आर्थिक परिस्थिति के आधार पर महिलाओं की परिस्थिति का मूल्यांकन और मूलरूप से उनके अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व की यथास्थिति पर प्रश्नचिन्ह लगा देता है।

आधुनिक विकासशील राष्ट्रों में मूलतः एशिया के कुछ अविकसित राष्ट्रों में महिला श्रमशक्ति धीरे–धीरे औद्योगिक विकास के सम्वाहको के रूप में देखी जाने लगी है भारतीय महिलाओं के संदर्भ में किए गए अध्ययनों से यह स्पष्ट होता है कि ऐतिहासिक विकास के साथ–साथ महिलाओं की सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थिति और जीवनशैली में अंशात्मक सुधार हुआ है। भारतीय समाज में महिलाओं की आर्थिक परिस्थितियों का निरूपण अथवा सामान्यीकरण करने के लिए आवश्यक है कि संपूर्ण उत्पादन संरचना में महिला श्रम और उसकी सहभागिता को विवेचित किया जाए।

भारत में ग्रामीण महिलाये

भारत को गांवों का देश कहा जाता है और यह सच भी है। वैश्वीकरण के इस दौर में भी भारतीय अर्थव्यवस्था पूरी तरह से गांव पर टिकी है। इसीलिए तो मानसून में जरा सी देरी होते ही मुद्रास्फीति बढ़ जाती है और दलाल–स्ट्रीट पर सूचकांक ओंधे मुंह गिर पड़ता है। आज भी भारत की अर्थव्यवस्था में कृषि क्षेत्र का योगदान 25 फीसदी से अधिक है। सवाल है कि कृषि क्षेत्र में वास्तविक कार्यबल कौन है? चाहे खेत हो या खलिहान, वो महिला ही है जो सारे दिन बैल की तरह जुती रहती है। पशुधन के मामले में भारत सबसे धनी है। भारत विश्व का सबसे बड़ा दुग्ध उत्पादक देश भी है। ग्रामीण महिलाओं के बिना पशुधन और दूध दुहने की क्या कल्पना भी की जा सकती है? वास्तव में कूरियन की खेत–क्रांति के सफल होने के पीछे ग्रामीण महिलाओं की हाड़–तोड़ मेहनत ही है। लेकिन उनके इस महत्वपूर्ण योगदान की कोई खतो–किताबत नहीं, किसी को नहीं पता कि अर्थव्यवस्था में महिलाओं का योगदान क्या है? भारतीय समाज में महिलाओं की जीवनशैली का मूल्यांकन इनकी पारिवारिक संरचना में ही संभव है। परिवार में महिलाओं की भूमिका मां एवं पत्नी के रूप में महत्वपूर्ण होती है। पुरुष एवं स्त्री को प्राप्त आर्थिक एवं नैतिक अधिकार के व्यवहारिक स्वरूप परिवार के व्यवस्थापरक क्रियाकलापों में प्रकट होते हैं। महिलाओं को पारिवारिक संरचना में लैंगिक असमानता के व्यवहारिक स्वरूप से अंतक्रिया करनी पड़ती है। आधारभूत आवश्यकताओं जैसे भोजन और स्वास्थ्य देखरेख में पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं को मिलने वाला कम भाग, संसाधन संग्रह में सहभागिता उनके पुनर्वितरण में असमानता, बच्चों के लिए पौष्टिक आहार की जिम्मेदारी और मुख्यतः निर्धन पारिवारिक दशाओं में पिता की अपेक्षा माता की आय पर बच्चों की निर्भरता आदि, ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं, जो परिवार के अन्दर ही मूल्यांकित किए जा सकते हैं।

भारतीय समाज में पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं और बच्चों की निम्न जीवन प्रत्याशा दर समाज के विशेष चरित्र को उजागर करती है। लैंगिक अनुपात में भिन्नता में धीरे–धीरे कमी आ रही है जिसका श्रेय स्वास्थ्य देखरेख के संदर्भ में वैज्ञानिक अनुसंधानों और चिकित्सापरक व्यवस्थाओं को दिया जा सकता है। निर्धन परिवारों में महिलाएं सामान्यतः अपनी बीमारी को इसलिए भी छिपाती रहती है जिससे उनकी परिवार के क्रियाकलापों में बाधा उत्पन्न न हो और दवाओं पर खर्च न हो। भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद् द्वारा किए गए सर्वेक्षणों से यह ज्ञात होता है कि परिवार में महिलाओं को औसत खाद्य पदार्थ भी अन्य सदस्यों की तुलना में कम प्राप्त होते हैं। स्पष्टतः महिला और पुरुष में असमानता सामाजिक संरचना से जुड़ी हुई हैं। निर्धन परिवारों में महिलाएं परिवार की आय में प्रमुख योगदान करती है और कभी–कभी तो वे पुरुषों की अपेक्षा अधिक योगदान करती हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में 85 प्रतिशत महिलाएं, कृषि, पशुपालन आदि क्रिया–कलापों सें जुड़ी हैं। गांवों में स्वास्थ्य और सुरक्षा की क्या स्थिति है, यह किसी से छिपी नहीं है। वास्तव में इन महिला श्रमिकों को बेहद प्रतिकूल माहौल में काम करना पड़ता है और कई बार तो इन्हें शारीरिक शोषण का भी शिकार होना पड़ता है।

राष्ट्रीय लोक वित्त और नीति संस्थान (NIPFC) के अनुसार, शहरी क्षेत्रों में महिलाओं की मजदूरी, पुरुषों की औसत मजदूरी की लगभग 80 प्रतिशत होती है जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में श्रमिक महिलाओं को पुरुष श्रमिकों के मुकाबले मात्र 60 फीसदी पगार ही मिलती है। स्पष्ट है कि वेतन के भुगतान में लिंग के आधार पर भेद किया जाता है और महिलाओं को अपेक्षाकृत कम वेतन दिया जाता है।

महिला विकास के प्रतिमान

समूचे विश्व सहित भारत में भी महिलाओं की स्थिति में तेजी से परिवर्तन हो रहा है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में महिलाएं बढ़–चढ़ कर हिस्सा ले रही हैं और सफल भी हो रही हैं। बात चाहे हम राजनीति की करें या व्यवसाय की बात मीडिया की हो या भारी उद्योग, इंजीनियरिंग, चिकित्सा, अंतरिक्ष और वैज्ञानिक शोध की, हर क्षेत्र में महिलाओं ने अपनी योग्यता और दक्षता साबित की है। जीवन का कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है जहां महिलाओं की प्रभावी उपस्थिति न हो महिलाएं आज तेजी से विकास के पथ पर अग्रसर है। यह सच तो है लेकिन पूरा सच नहीं है। यह तो तस्वीर का एक उजला, छोटा–सा हिस्सा भर है। तस्वीर का दूसरा रुख कहीं अधिक स्याह और कहीं अधिक विस्तृत है। केवल इस आधार पर कि महानगरों और बड़े शहरों में भी महिलाएं हर व्यवसाय में उपस्थित है, ऊंचे पदों पर विराजमान हैं और इंजीनियरिंग, मीडिया, अंतरिक्ष विज्ञान जैसे क्षेत्रों में भी अपनी प्रभावी उपस्थिति दर्ज करा रही हैं हम यह निष्कर्ष नहीं निकाल सकते कि महिलाओं की सामाजिक व आर्थिक स्थिति सुधर चुकी है और ये विकसित हो गई हैं।

कारण साफ है। मुंबई, दिल्ली, कोलकाता, चेन्नई, बंगलौर आदि की महिलाएं, समूचे भारत का प्रतिनिधित्व नहीं करती हैं। महानगरों की महिलाएं अंग्रेजी अखवारों के तीसरे 'पेज' पर जरूर ज्यादा जगह घेर लेती हैं लेकिन ग्रामीण भारत की तस्वीर दूसरी है।

विकास एक सतत प्रक्रिया है जो समय के साथ चलती रहती है। विकास के दो पक्ष हैं–मानव (जनसंख्या) और संसाधन यदि

संसाधनों का उपयोग करके हम मानव जाति की जरूरतें पूरी कर सकें तो हम कह सकते हैं कि हम विकास कर रहे हैं। कोई भी समाज तभी विकसित कहला सकता है जब उसकी सभी जरूरतें पूरी हो जाती हो। उल्लेखनीय है कि बात जरूरतों की है, न कि इच्छाओं की। भोजन, आवास, स्वास्थ्य सुविधाएं किसी भी व्यक्ति की आधारभूत जरूरतें है क्योंकि इनके बिना जीवन पल भर भी नहीं चल सकता। लेकिन ये जरूरतें सिर्फ जीवन निर्वाह की हैं। विकास की शर्तें कुछ अलग है। शिक्षा, लिंगानुपात, सामाजिक सुरक्षा, व्यक्तिगत स्वतंत्रता, न्यूनतम स्वास्थ्य सेवाएं और काम करने की आजादी आदि को संयुक्त राष्ट्र संघ विकास का पैमाना मानता है जैसे संयुक्त राष्ट्र संघ, मानव विकास सूचकांक (HDI) निर्धारित करने के लिए प्रतिव्यक्ति आय, जीवन स्तर और पर्यावरणीय दशाओं का भी प्रयोग करता है

मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि भोजन, आवास, स्वास्थ्य सुविधाओं और शिक्षा प्राप्त करने की सुविधाओं के अलावा उच्च लिंगानुपात, सामाजिक व व्यक्तिगत सुरक्षा आदि को विकास का पैमाना माना जा सकता है। अब यदि भारतीय महिलाओं की स्थिति को इन कसौटियों पर कसना शुरू किया जाए तो निष्कर्ष निकलेगा कि भारतीय महिलाएं, पुरुषों के मुकाबले और अन्य देशों की महिलाओं के मुकाबले, विकास की दौड़ में काफी पीछे हैं।

क्या इसे विकास कहा जा सकता है कि आज हम प्रतिवर्ष हजारों शिशुओं की गर्भ में ही सिर्फ इसलिए हत्या कर देते हैं कि गर्भ में पल रहा वो जीवन एक कन्या का है। इन घृणित हत्याओं के कारण देशभर में लिंगानुपात बेहद कम है। लिंगानुपात यानि प्रति हजार पुरुषों पर महिलाओं की संख्या विश्व के अधिकतर विकसित देशों में लिंगानुपात लगभग बराबर है तो कहीं–कहीं तो यह पुरुषों के मुकाबले अधिक भी है। वास्तव में लिंगानुपात सीधे–सीधे समाज में महिलाओं की स्थिति का प्रतीक है कम लिंगानुपात यानि कम विकसित राष्ट्र । लिंगानुपात के मामले में हमारे यहां एक और विसंगति है। यदि गरीब और पिछड़े राज्यों में लिंगानुपात कम हो तो एकबारगी बात समझ में भी आती है लेकिन हमारे यहां लिंगानुपात उन राज्यों में न्यूनतम है जो आर्थिक दृष्टि से भारत के विकसित राज्यों में गिने जाते हैं। हरियाणा और पंजाब जैसे अतिविकसित राज्यों में न्यूनतम लिंगानुपात बताता है कि भारत में यह सिर्फ आर्थिक समस्या ही नहीं है अपितु इसके पीछे कई सामाजिक व सांस्कृतिक कारण भी हैं जो समाज अपनी बेटियों को पैदा ही नहीं होने देता उसे किस मुंह से हम विकसित कह सकते हैं?

क्या आर्थिक विकास और स्त्रियों के क्रमिक विकास में सकारात्मक सहसंबंध है ? इस क्रमिक विनाश के बीच यह सवाल आर्थिक समृद्धि वाले द्वीपो में बढ़ती हुई गहराइयां उठा रही है ।क्या आधुनिक विकास का प्रारूप, जिसकी बुनियाद ही आधुनिक तकनीक में है ,जिस का ढांचा अर्थशास्त्र से निर्मित है और जो विकास की संपूर्ण व्याख्या आर्थिक विकास की भाषा में करता है ,वह आधी मानवता के खिलाफ है ? यह प्रश्न आज दुनिया भर में यहां तक कि विकसित देशों में भी , अलग अलग संदर्भ में उठाया जा रहा है । हमारे यहां या प्रश्न बहुत जल्दी ही यक्ष प्रश्न बनने वाला है जिसका हल किए बगैर विकास की बात नहीं की जा सकती ।

यूरोपीय नजरिया है कि औरतें घर से बाहर निकल रही है ।काम कर रही है और अपने पैरो पर आर्थिक रूप से खड़ी हो रही है तो आजाद हो रही है ।लेकिन आजादी का मतलब दैहिक शोषण तो नहीं है इन मुद्दों पर महिला मुक्ति आंदोलन क्या कर रहे हैं वे महिला आजादी की बात तो करते हैं लेकिन ठोस कदम नहीं उठाते ।भारत में अब औद्योगिक क्षेत्र में महिलाओं का सिर्फ श्रम शोषण और आर्थिक शोषण होता था परंतु आर्थिक उदारीकरण के बाद निर्यात बढ़ाने और विदेशी मुद्रा कमाने के नाम पर खोले गए एक्सपोर्ट प्रोसेसिंग जोन स्त्रियों के यौन शोषण के भी मौके उपलब्ध करा रहे हैं। इन बहुराष्ट्रीय कंपनियों में काम करने वाली अधिकांश महिलाएं युवा है और भी कम तनख्वाह पर चुपचाप अधिक जिम्मेदारी से काम करती है। शोषण के खिलाफ जल्दी आवाज नहीं उठाती यूनियन नहीं बनाती, और बनाती भी है ,तो उन्हें आसानी से कुचला दबाया जा सकता है, इसलिए उन्हें काम में प्राथमिकता दी जाती है । उनसे उनकी क्षमता के मुकाबले बहुत ज्यादा काम लिया जाता है, जिससे उनकी आंखों और दिमाग पर दबाव पड़ता है और युवावस्था तक पहुंचते–पहुंचते उनकी ऊर्जा काफी हद तक खत्म हो जाती , ऐसी स्थिति में कंपनी उनके स्थान पर नई लड़कियों को रख लेती है ,इस प्रकार लगातार महिलाओं के रिप्लेसमेंट के द्वारा उनके शोषण की प्रक्रिया विकास की आड़ में निरंतर जारी है ।

विकास ,विशेष रूप से औद्योगिक तथा व्यापारिक विकास के साथ बहुउद्देश्य कंपनियां भी जुड़ी हुई है ।नई वैश्विक अर्थव्यवस्था उदारवादी अर्थव्यवस्था के साथ जुड़ी हुई है ।विशेष रुप से विकसित देशों में विदेशी निवेश को विकास तथा अधिक समृद्धि के साथ जोड़ा जाने लगा है। बहुराष्ट्रीय कंपनियां विकास की आवश्यकताओं के लिए आवश्यक समझी जाने लगी है बहुत से देशों ने अपने दरवाजे अब इन बहुराष्ट्रीय कंपनी स्थानों के लिए खोल दिए हैं ।विदेशी निवेश इन वैश्विक विकास आंतरिक स्रोतों का स्वयं के द्वारा दोहन तथा देशी आवश्यकताओं के अंतर्गत विकास की संभावनाओं के साथ जुड़ गया है और यह देशों के लिए पूंजी की कमी को दूर करने का साधन है। विकास के प्रति मानव में इसे अनिवार्य आर्थिक आवश्यकता के रूप में स्वीकार किया जाने लगा है ।वैश्विक विकास आंतरिक स्रोतों का स्वयं के द्वारा दोहन तथा देशी आवश्यकताओं के अंतर्गत विकास की संभावनाओं के साथ जुड़ गया है ।

विश्व अर्थव्यवस्था में पूंजी के संगठन के विविध रूप है ।जो कुछ हो रहा है वह एक अवश्य उभरने वाला सूचना आधारित उत्पादन नहीं है । यह उत्पादन प्रतियोगिता आधारित है और तुलनात्मक दृष्टि से इसके बारे में कोई भविष्यवाणी करना संभव नहीं है ।वैश्वीकरण से प्रभावित उत्पादन,जो विकास का ही एक हिस्सा है,के बारे में कोई भविष्यवाणी करना कठिन है। बाजार के लचीलापन तथा उतार–चढ़ाव विकास की दर को प्रभावित करते हैं जो प्रवृतियां उभरी है वह विश्व संस्करण की है इस प्रवृत्ति में विकास का न तो कोई रखरखाव है और न कोई उसका विस्तार ।विकास की प्रक्रिया में भी समान है और ना ही कोई ऐसे प्रतिरोध है जो इस सारी प्रक्रिया को अपनी गति दे सके ।

कार्यस्थल पर महिलाओं को किन दिक्कतों का सामना करना पड़ता है यह भी किसी से छिपा नहीं है। हो सकता है कि कुछ लोग मानते

हो कि केवल अशिक्षित और निम्नवर्गीय महिलाओं का ही कार्यस्थल पर शोषण होता है क्योंकि उनमें जागरूकता की कमी होती है लेकिन सच्चाई इसके ठीक विपरीत है। राष्ट्रीय महिला आयोग का एक अध्ययन बताता है कि पढ़ी–लिखी आधुनिक कामकाजी महिलाओं को अपेक्षाकृत अधिक शोषण का सामना करना पड़ता है। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो के आंकड़े भी इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कार्यस्थल पर होने वाले महिलाओं के यौन शोषण को रोकने के लिए सर्वोच्च न्यायालय 1999 में ही दिशा–निर्देश जारी कर चुका है, लेकिन उसके निर्देशों का किस तरह पालन किया जा रहा है यह किसी भी सरकारी कार्यालय में देखा जा सकता है। निजी और कार्पोरेट क्षेत्र में भी स्थिति बहुत उजली नहीं है, अंतर है तो सिर्फ तरीके का संस्कृति का है

भारतीय समाज कितना विकसित हो गया है इसकी एक झलक, बलात्कार का दिन–प्रतिदिन ऊंचा उठता ग्राफ ही दिखा देता है। मध्ययुगीन समाज की यह बर्बरता आज भी बदस्तूर जारी है। न तो उड़ीसा के दूरदराज के किसी परंपरागत गांव में महिलाएं सुरक्षित हैं और न ही देश की राजधानी के 'राजपथ' पर लड़कियां न तो शैक्षणिक संस्थाओं में सुरक्षित हैं और न ही घर पर मध्यकालीन युग में आक्रांता ही बलात्कार किया करते थे लेकिन आधुनिक युग में जब घर की चारदीवारी के भीतर 'खून के रिश्ते' ही जोर–जबरदस्ती करने लगे हों तो विकास के स्तर को समझा जा सकता हैं। कम से कम इस मामले में तो कहा ही जा सकता है कि हम विकास–पथ पर नहीं, पतन की ओर बढ़ रहे हैं।

परिवार को समाज की महत्वपूर्ण संरचनात्मक इकाई माना जाता है लेकिन पारिवारिक स्तर पर भी महिलाएं सुरक्षित नहीं है। घर के भीतर ही उन्हें पारिवारिक और वैवाहिक हिंसा का सामना करना पड़ता है। पतिद्वारा व्यवहार केवल किस्से–कहानियों की चीज नहीं है। वास्तव में अधिकांश निम्न और मध्यम वर्गीय परिवारों में ऐसा होता है। 'अस्मिता' नामक गैरसरकारी संगठन का शोध बताता है कि उच्च परिवारों की अतिशिक्षित लगभग 13 प्रतिशत महिलाएं, पति द्वारा हाथापाई का शिकार होती है। दरअसल वैकहिक हिंसा का संबंध शिक्षा या आर्थिक स्तर से न होकर हमारे मानसिक स्तर से बहुत कुछ बदल चुका है लेकिन अधिकांश पुरुषों का मानसिक स्तर आज भी नहीं है जहां 300–400 साल पहले था।

किसी भी व्यक्ति के लिए जीवन सबसे अधिक महत्वपूर्ण होता है लेकिन जब व्यक्ति इस जीवन से ही पिंड छुड़ाने लग जाए तो समझा जा सकता है कि व्यक्ति पर कितना अधिक मानसिक दबाव होगा। महिलाओं द्वारा की जाने वाली आत्महत्याओं का बढ़ता ग्राफ बताता है कि भारतीय महिलाएं कितनी विपरीत परिस्थितियों में जीवनयापन कर रही हैं। आत्महत्या करने वाली महिलाएं समाज के सभी वर्गों से है जो बताता है कि असंतोष प्रत्येक स्तर पर है।

कहा जाता है कि सिनेमा, समाज का आईना होता है और उसमें वही सब कुछ दिखाया जाता है जो समाज में घटित होता है। अगर यह कथन सच है तो मान लेना चाहिए कि हमारा समाज मानसिक रूप से दिवालिया हो चुका है। सिनेमा और अन्य संचार माध्यमों पर जिस तरह 'स्त्री' का चित्रण किया जाता है उससे पता चाहता है कि समाज के अधिकांश हिस्से के लिए महिलाएं आज भी केवल आर्टिकल ही है, जिसे सजाया जा सकता है, बेचा जा सकता है। देखा जाए तो कोख से कब्र तक महिलाओं के हिस्से में सिर्फ तिरस्कार ही आता है आर्थिक व सामाजिक विकास की बयार से अधिकांश भारतीय महिलाए आज भी कोसों दूर है। मानव विकास सूचकांक के हिसाब से नार्वे व स्वीडन सर्वोच्च स्थान पर हैं। वहाँ आर्थिक क्रियाओं में महिलाओं के योगदान का अलग से मूल्यांकन किया जाता है। विश्व के अधिकांश देश ऐसा करने लगे हैं। लेकिन विश्व को चौथी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था भारत में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है। वस्तुतः किसी ने सोचा तक नहीं है कि ऐसा भी कुछ किया जा सकता है। कारण साफ हैं। किसी भी राजनीतिक दल या व्यवस्था ने सोचा ही नहीं कि अर्थव्यवस्था में महिलाओं का भी कुछ योगदान होता होगा या गाँव में पुरुषों के मुकाबले महिलाएं ज्यादा काम करती हैं लेकिन उनके योगदान की कहीं कोई चर्चा नहीं होती क्योंकि उनके द्वारा संपादित किए जाने वाले कई काम की तो काम माना ही नहीं जाता है, उसे तो उनका कर्तव्य मान कर भुला दिया जाता है।

जब महिला श्रमिकों को इतनी प्रतिकूल परिस्थितियों में काम करना पड़ता है और प्रत्येक स्तर पर भेदभाव का शिकार होना पड़ता है तो कैसे कहा जा सकता है कि महिलाओं का विकास हो रहा है। विकास हो तो रहा है लेकिन यह विकास मात्र कुछ महिलाओं के हिस्से में ही आता है और अधिकांश भारतीय महिलाएं तो विकास के मायने ही नहीं जानती। रोजाना सुबह–शाम भरपेट भोजन मिल जाना ही उनके लिए विकास है और विकास का यह न्यूनतम मापदंड भी अधिकांश ग्रामीण महिला श्रमिकों के लिए एक 'स्वप्निल' स्वप्न भर है यदि भारत सरकार, प्रसिद्ध अर्थशास्त्री अमर्त्य सेन के विचारों पर चले तो अपेक्षाकृत शीघ्र ही महिलाओं का विकास किया जा सकता है। डॉ. अमर्त्य सेन का एक शोध–पत्र प्रकाशित हुआ था इस शोध में अमर्त्य सेन ने कहा था कि यदि अधिकारों का विस्तार कर दिया जाए तो विकास अपने आप हो जाएगा। विकास के लिए अधिकार जरूरी है। भारतीय महिलाओं को भी आज अधिकार दिए जाने की जरूरत है। जब इन्हें वाजिब राजनैतिक व सामाजिक अधिकार मिल जाएंगे तो वे स्वतः ही विकास के रास्ते पर चल पड़ेंगी आधी दुनिया को विकास से महरूम रख कर विकास का सपना देखना महज एक बेवकूफी ही है।

सन्दर्भ सूची–

1. ललित कुमावत, 2004,. 'पंचायती राज एवं वंचित महिला समूह का उभरता नेतृत्व', दिल्ली, क्लासिकल पब्लिशिंग कंपनी, पृ. 27
2. आशा रानी वोहरा,1994, 'नारी शोषण आईने और आयाम',नई दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग , पृ. 127
3. मंजू जैन ,1990 , 'कार्यशील महिलाएं एवं सामाजिक परिवर्तन', जयपुर, प्रिन्टवैल प्रकाशक, पृ० 110
4. इंदु भारती 2005 'आधी आबादी' , नई दिल्ली , पब्लिशर्स एंड डिसटीब्यूटर्स, पृ० 226–339, 244.
5. नरेश भार्गव, 2014, 'वैश्वीकरणः समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य', जयपुर, रावत पब्लिकेशन, पृ०139–143
6. स्वप्निल सारस्वत , 2005, 'महिला विकास एक परिदृश्य' , नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ० 11–20.
7. शर्मिला रेग, 2003, 'सोशियोलोजी ऑफ जैण्डर', नई दिल्ली, सेज